श्री आनंद कल्याण

वि.सं. २०७३ - कार्तिक पूर्णिमा • दि. १४ नवम्बर, २०१६ • अंक-५

5

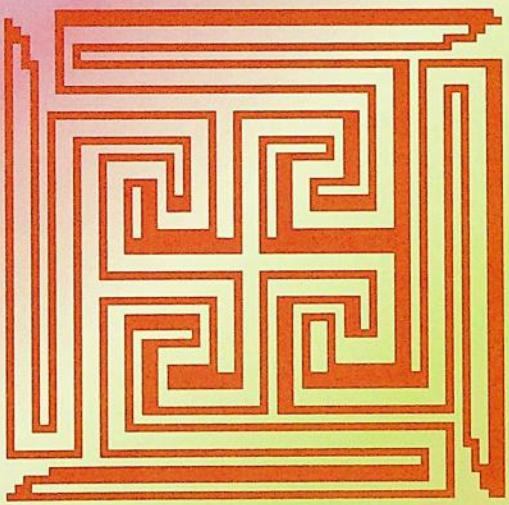

शेठ आणंदजी कल्याणजी
अहमदाबाद

श्री शत्रुंजय तीर्थाधिपति

श्री आदिनाथ दादा की ५००वीं सालगिरह

के उपलक्ष में

५००वीं सालगिरह का प्रसंग

संवत २०८७ वैशाख वद-६, सोमवार दिनांक १२-०५-२०३१

शेठ आणंदजी कल्याणजी पेढी

द्वारा प्रस्तुत लाभ लेने का सुवर्ण अवसर.....

"सुवर्ण महोत्सव प्रसंग आयोजित सर्व साधारण फंड"

१५ साल बाद आनेवाले

सुवर्ण महोत्सव में हमारा लाभ क्यों न हो ?

बस ! आज से सिर्फ १ रुपया प्रति दिन द

१ साल के रु. ३६०, १५ साल के रु.५४००.

शेठ आणंदजी कल्याणजी के नाम का एकाउन्ट पेयी चैक / नकद भारत की एच.डी.एफ.सी. बैंक की किसी भी शाखा में सेविंग्स एकाउन्ट नं. 50100165224400 में जमा किया जा सकेगा। चैक जमा कराने के बाद पे-इन-स्लीप ट्रस्ट के अहमदाबाद के पते पर अपना नाम, पता, मोबाईल नंबर, ई-मेईल सहित फोर्म भरके भेज कर दान की रसीद अवश्य प्राप्त करे।

इस हेतु फोर्म शेठ आणंदजी कल्याणजी ट्रस्ट संचालित सभी तीर्थो में उपलब्ध है। इस के अलावा www.anandjikalyanjipedhi.org वेबसाईट पर से भी फोर्म डाउनलोड कर सकेंगे।

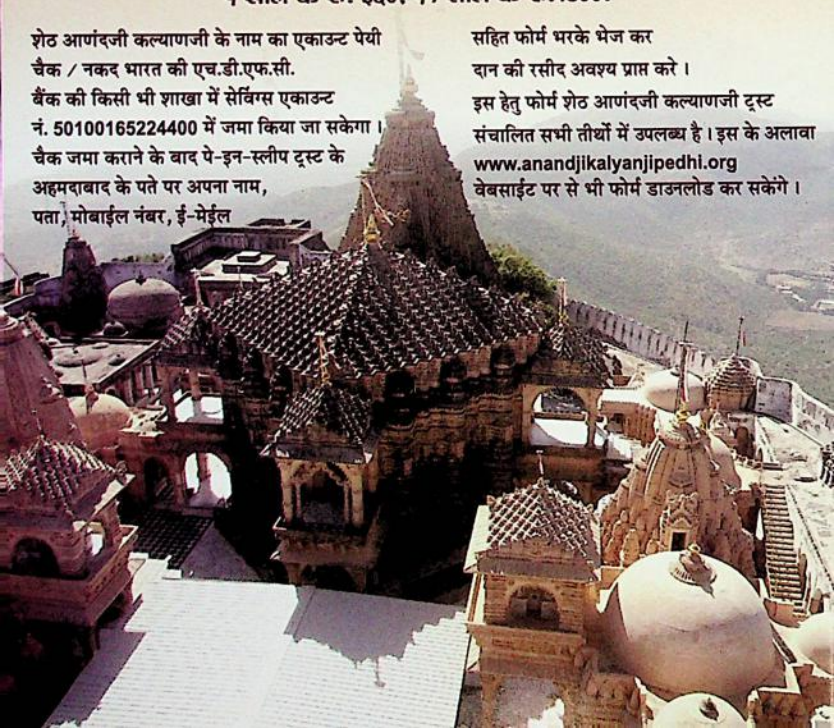

"श्री आनंद कल्याण" (त्रिमासिक पत्र)

(धार्मिक धर्मादा ट्रस्ट रजि नं. ए-१२९९/अहमदाबाद)

वर्ष : २ अंक : ५ कींमत : ₹ २० वार्षिक शुल्क : ₹ १००

नूतन वर्ष की हार्दिक बधाई

वि.सं. २०७३, कार्तिक शुक्ला-१

दीपावली की मध्यरात्रि में श्रमण भगवान महावीरस्वामी का निर्वाण और नूतन वर्ष के प्रारंभ के समय प्रातःकाल में अनंत लब्धिनिधान परमगुरु गौतमस्वामी को केवलज्ञान की प्राप्ति..... इन पवित्र प्रसंगो के परमाणु हम सभी की आत्मभूमि पर सम्यग्ज्ञान का प्रकाश फैलाए और उस प्रकाश के सहारे हम आत्मशुद्धि के सौपानों पर धीमे किंतु दृढ़ कदम रखें..... सभी का तन तप से निरोगी रहे, मन भक्ति में मस्त रहे, जीवन सत्कार्य में व्यस्त रहे ऐसी शुभकामनाएँ।

- आनंद कल्याण परिवार

: प्रकाशक :

शेठ आणंदजी कल्याणजी

श्रेष्ठी लालभाई दलपतभाई भवन,

२५, वसंतकुंज, नवा शारदा मंदिर रोड, पालडी, अहमदाबाद-३८० ००७.

श्री आनंद कल्याण (त्रैमासिक पत्र)

वर्ष : २ | अंक : ५

प्रकाशन

वि.सं. २०७४, कार्तिक शुक्ला-१५ • ता. : १४-११-२०१६, सोमवार

प्रकाशक

महेन्द्र शाह (जनरल मेनेजर)

शेठ आणंदजी कल्याणजी ट्रस्ट

श्रेष्ठी लालभाई दलपतभाई भवन,

२५, वसंतकुंज, नवा शारदा मंदिर रोड़, पालडी, अहमदाबाद-३८०००७

दूरभाष : 26644502 – 26645430

E–mail : shree_sangh@yahoo.com / info@anandjikalyanjipedhi.com

मुद्रक :

नवनीत प्रिन्टर्स (निकुंज शाह) मोबाईल : ९८२५२६११७७

शिल्पकला और स्थापत्य के खजाने जैसे "राणकपुर तीर्थ" से जुड़े हुए साहित्य को आज ही लाईए।

राणकपुर तीर्थ की डीवीडी, कोफी टेबल बुक, परिचय पुस्तिका इत्यादि आपके लिए पेढी के कार्यालय पर उपलब्ध है।

तीर्थाधिराज शत्रुंजयगिरि के पंद्रहवें उद्धार का अपूर्व इतिहास

भारतवर्ष में मुस्लिम राज्य की स्थापना के बाद उन्होनें देश में अनेक हिन्दुधर्मियों को और धर्म स्थानों को नष्ट किया है, शत्रुंजय महातीर्थ भी उनसे नहीं छूटा है। सं. १३६९ के वर्ष में खिलजी वंश के अल्लाउद्दीन की सैना ने मुख्य मंदिर को नष्ट किया और देवाधिदेव आदिनाथ प्रभु की परम पवित्र प्रतिमा को भंग किया। उस समय गुजरात की राजधानी पाटण शहर में ओसवाल जाति के देशल शाह और उसके पुत्र समरसिंह (समरो शाह) रहते थे। वे देव, गुरु, धर्म के संपूर्ण उपासक, जैन नररत्न, बुद्धिमान, राजकीय पहुँचवाले और धनाढ्य पुण्यशाली पुरुष थे। दोनों श्रद्धालु पिता-पुत्र ने उस तीर्थ के विध्वंस की वास्तविकता जानी तो उन्हें अपार दुःख हुआ और उस समय के उपकेश गच्छ के धुरंधर आचार्य श्री सिद्धसेनसूरि के उपदेश से इन पुण्यशाली आत्माओं को तीर्थ के उद्धार की तीव्र उत्कंठा उत्पन्न हुई और गुरुवर्य से सहायता मांगी। अल्लाउद्दीन खिलजी का अलपखान नामक पाटण शहर का संचालन करनेवाला सूबेदार था, समरसिंह उसका प्रीतिपात्र और विश्वसनीय मित्र था, पिता देशलशाह के आदेश से तीर्थोद्धार के कार्य हेतु सावधान होकर श्री सिद्धसेनसूरि के पास जाकर जबतक शत्रुंजय तीर्थ का उद्धार पूर्ण न कर सकूँ तब तक ब्रह्मचर्य का पालन करुंगा, दिन में दो बार भोजन ग्रहण नहीं करुंगा, खेल (पीठी) तेल और पानी इन तीन वस्तुओं से स्नान नहीं करुंगा, एक बार खाउँगा और भूमि पर शयन करुंगा। इसप्रकार अभिग्रह धारण कर पिता के पास आकर सारी बात कही। धन्य है ऐसे पुण्यशाली उत्तम नर को! इसके पश्चात् मणि, मोती, वस्त्र, स्वर्ण और अलंकार इत्यादि उत्तम वस्तुओं की भेंट-सौगात लेकर अनुज्ञा प्राप्ति हेतु व संतोष प्रदान करने के लिए सूबेदार अलपखान के पास समरसिंह आया। प्रणाम कर के सौगात दी जिससे खान प्रसन्न हुआ और आने का कारण

पूछा। समरसिंह ने कहा कि 'आपकी सैना ने हमारे शत्रुंजय तीर्थ का विध्वंस किया है और हमारे सभी धार्मिक कार्य अवरुद्ध हो गए हैं, इसलिए मुझे तीर्थ का उद्धार करना है, इस कार्य हेतु आपके आदेश की आवश्यकता है। यह सुनकर अलपखान अत्यंत प्रसन्न हुआ और इच्छित कार्य को करने की आज्ञा दी, इसके लिए उसने समरसिंह को सही सिक्का कर अपना आदेशपत्र दिया और आदेशपत्र के साथ स्वर्ण का मणिमोती जड़ित शिरस्त्राण सहित तसरीफ देकर समरसिंह को अपना कार्य सिद्ध करने के लिए कहा। खान को प्रणाम कर उसके द्वारा दिए गए उत्तम अश्व पर सवारी कर अलपखान के सेवक बहेराम मलिक के साथ अपने घर आया। विभिन्न उपहार द्वारा बहेराम मलिक को संतुष्ट किया। वहाँ से समरसिंह नगरजनों के साथ गुरु के पास आया, वहाँ गुरु महाराज को वंदनादि कर समस्त बात विस्तार से बताई। गुरुमहाराज ने उसका भाग्य उत्तम जानकर स्वयं भी आनंदित हुए। समरसिंह ने कहा कि भूतकाल में वस्तुपाल मंत्री ने मूर्ति के लिए मम्माण खान की आरस की शिला मंगवाई थी और जानकारी के अनुसार वह भूगर्भ में अक्षत है उसकी प्रतिमा बनवाउँ ?

गुरु ने कहा कि, 'वह श्री संघ को सौंपी हुई है इसलिए चतुर्विध संघ की आज्ञा लेकर बनाई जा सकती है, इसलिए वैसा करो।'

इसके पश्चात् समरसिंह ने श्री नेमनाथ प्रभु के मंदिर में सभी आचार्यों, श्रावकों और संघ के अग्रगण्यों को एकत्रित किया और हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि धर्म के शत्रु म्लेच्छों ने श्री शत्रुंजय तीर्थाधिपति की प्रतिमा भग्न की है। तीर्थ और तीर्थ नायक का उच्छेद होने के कारण श्रावकों के समस्त धर्म अस्त हो जाएँगे। मंत्री वस्तुपाल ने मम्माणखान से जो आरसशिला मंगवाई थी वह आज भी भूगर्भ में अक्षत पड़ी हुई है, वह श्री संघ को सौंपी हुई है इसलिए आपकी आज्ञा हो तो उससे अथवा दूसरी शिला मंगवाकर मैं तीर्थराज की प्रतिमा बनवाऊँ।

आचार्य-संघपति और श्रावक आदि समरसिंह की प्रशंसा करते हुए बोले कि यह अति भयानक समय है इस कारण मंत्रीश्वर के विपुल धन-द्रव्य के व्यय द्वारा लाई गई वह शिला इस समय बाहर निकालना उचित नहीं है, इसलिए भले ही वह जहाँ है वहाँ ही रहे और आप आरासण की खान से अन्य दूसरी शिला मंगवाकर नवीन प्रतिमा बनवाओ' संघ ने प्रसन्नता के साथ कहा। श्री संघ की आज्ञा शिरोधार्य कर घर पर आकर पिता देशलशाह को संपूर्ण वृत्तांत सुनाया।

श्रेष्ठि समरशाह ने पिता की आज्ञा से आरासण की खान से शिला मंगवाने हेतु प्रार्थना पत्र के साथ सौगात लेकर अपने विश्वसनीय सेवकों को भेजा, वे कुछ ही दिनों में ही त्रिसंगपुर पहुँच गए। वहाँ महिपालदेव नामक राजा राज्य करता था जो कि आरासण की खान का स्वामी था। राजा शैवधर्मी था तथापि जैनधर्म के प्रति श्रद्धालु था। उसके राज्य में कोई भी हिंसा नहीं करता था। उस राजा का पाताशाह नामक मंत्री था।

समरसिंह के सेवकों ने वहाँ पहुँचकर राजा को भेट सौगात के साथ प्रार्थनापत्र दिया। राजा की आज्ञा से मंत्री ने प्रार्थनापत्र पढ़कर सुनाया। राजा महिपालदेव ने समराशाह को धन्यवाद दिया और आरासण की खान अपने आधिपत्य में है तथा इस प्रकार के पुनित काम में उसे याद किया गया है, यह जानकर स्वयं को धन्य मानने लगा। महिपालदेव ने मंत्री को सूचित करते हुए कहा कि भेट-सौगात वापिस लौटा दो, क्योंकि ऐसे पुनित पुण्यकार्य हेतु धन नहीं लिया जा सकता, इतना ही नहीं अपितु इसके पश्चात् जिनबिंब के लिए शिलादल ग्रहण करनेवाले से लिया जानेवाला कर भी आज से सदैव के लिए मैं बंद करता हूँ और इस कार्य हेतु कोई भी सहायता चाहिए वह भी अवश्य दूँगा। ऐसा कहकर राजा मंत्री और समरसिंह के सेवकों के साथ आरस की खान पर गया, और आरस निकालनेवाले व्यक्तियों को बुलाकर सन्मान के साथ जिनबिंब के लिए एक बड़ी शिला निकालने का मूल्य निर्धारित किया। शुभ मुहूर्त में खान

की पूजा कर कार्य प्रारंभ किया और उस शिला को निकालनेवालों का वस्त्र, तांबूल, भोजन आदि से समरसिंह के सेवकों ने सन्मान किया और साथ ही एक भोजनशाला भी खोली। इसके पश्चात् मंत्री को वहाँ रखकर अपने नगर में आया, तथापि नित्य प्रतिदिन अपने सेवकों को भेजकर समाचार मंगवाता, सूचनाएँ देता। कुछ ही दिनों में शिला बाहर निकली उसे पानी से धोकर साफ करने पर उसके मध्यभाग में एक दरार दिखाई दी, इसकी सूचना समरसिंह को मिलने पर उसने दूसरी शिला निकालने की सूचना भेजी, दूसरी शिला निकालने पर भी ऐसा ही हुआ, इस कारण राजा, मंत्री और समरसिंह के सेवक भी दुःखी हुए और वे सभी देव की आराधना करने हेतु अट्ठम तप कर डाभ(कुश) के बिस्तर पर सोने लगे। तीसरे दिन शासन देवताओं ने अमुक स्थान पर से शिला निकालने की सूचना दी और उसप्रकार करने से स्वच्छ, निर्मल और निर्दोष शिला निकली। इसके समाचार समरसिंह को देने पर उन्होनें स्वर्ण के दाँत सहित जिह्वा और दो पट्ट वस्त्र समाचार देनेवाले को भेंट स्वरूप दिए और चतुर्विध संघ को एकत्रित कर यह आनंदप्रद समाचार सभी को सुनाया। संघ ने जिनबिंब के निर्माण का आदेश समरसिंह को दिया।

'सम्पूर्ण मुख्य प्रासाद को म्लेच्छों ने नष्ट किया है, और देवकुलिकाएँ जो आसपास है वे भी गिरा दी हैं, इस कारण इन सभी को नवीन बनवाकर प्रतिष्ठा करवानी होगी। इस पुण्य की प्राप्ति के लिए सभी को यथायोग्य कार्य का विभाजन करना चाहिए। 'इसलिए यह कार्य श्री संघ ने अलग-अलग व्यक्तियों सुपुर्द कर भिन्न भिन्न धर्म कार्य करने के लिए सौंपे। इसीप्रकार मुख्य प्रासाद का निर्माण करने हेतु किसी भाविक श्रावक द्वारा आज्ञा मांगने पर जिनबिंब का निर्माण करवानेवाला ही मुख्य प्रासाद निर्मित करवाए वही अधिक शोभास्पद है ऐसा कहकर श्री संघ ने दोनों को निर्मित करने का समरशाह को आदेश दिया।

पातामंत्री ने स्वर्ण के कंगन और वस्त्रदान से सूत्रधारों को संतुष्ट किया

तथा महिपालदेव राजा ने अखंड शिला निकली है ऐसा ज्ञात होने पर प्रसन्न होकर खान के स्थल पर आया और साक्षात् जिन ही हो ऐसा मानकर चंदन पुष्पादि द्वारा शिला की पूजा की। पश्चात् उस शिला को सूत्रधारों से उतरवाकर आरासण में उसका प्रवेश महोत्सव किया। इसके बाद अपने मंत्री पाताशाह को कुछ आवश्यक सूचनाएँ देकर राजा अपने नगर में लौट आया।

मंत्री ने शिला को एक बडे रथ में स्थापित की, उसे ठीक से रखवाकर कई व्यक्तियों और बलवान बैलों द्वारा खिंचवाकर बडे परिश्रम से पर्वत से नीचे उतारी और आगे चलने पर कुमारसेना गाँव के समीप वह रथ रुक गया। उस समय त्रिसंगमपुर के आसपास लोगों ने वहाँ पहुँचकर महोत्सव किया और यह समाचार पाटण समरसिंह को भेजा, जिससे वे बहुत प्रसन्न हुए व अगल-बगल के गाँवों से सम्मान के साथ शक्तिशाली बीस बैल मंगवाकर लोहे से जड़ा हुआ शकट तैयार करवाकर कुमारसेना गाँव भेजा। शिला को उसमें रखकर गाड़ा चलाने पर वह टूट गया, तीसरी बार भी ऐसा ही हुआ इसकारण मंत्री खिन्न हो गया और यह समाचार समरसिंह को मिलने पर उन्हें भी चिंता हुई। इसी बीच शासनदेवी ने प्रत्यक्ष होकर कहा कि - झंझा नामक गाँव में देव अधिष्ठित मजबूत शकट है वह तुम्हे मिलेगा जिससे तुम्हारा कार्य सिद्ध होगा। इतने में ही उस देवी का पूजारी वहाँ आ पहुँचा और उसने समरसिंह से कहा कि देवी ने मुझे आदेश दिया है कि समरसिंह को जाकर कहूँ कि मेरे शकट से सरलता से शिला ले जायी जा सकेती है, इस प्रकार वह शकट वहाँ भेजा। उसमें शिला रखवाकर अपने राज्य की सीमा तक पहुँचवाकर पाताशाह मंत्री अपने नगर में लौट आया। शिला अनुक्रम से खेरालु गाँव से होकर भांडु गाँव में पहुँची, यह समाचार देशलशाह को मिलने पर श्री सिद्धसूरिजी और पाटण के लोगों सहित वे भांडु गाँव आए और देशलशाह ने चंदनादि द्वारा पूजा की और अपने नगर में लौटे। शिला प्रत्येक गाँव और नगर में पूजाती हुई अनुक्रम से शत्रुंजयगिरि के पास आ पहुँची, जहाँ श्री पालीताणा के संघ ने अगवानी कर सत्कार पूजन

महोत्सव आदि किया। देशलशाह के परिवार ने उसका स्वागत किया और पाटण जाकर सूचना दी। देशलशाह ने उन व्यक्तियों को वापिस उस शिला को श्री शत्रुंजय गिरि पर चढ़ाने की सूचना देने हेतु भेजा, और साथ ही पाटण से प्रतिमा निर्माण करनेवाले सोलह बुद्धिशाली शिल्पियों (कारीगरों) को भेजा और जूनागढ़ से बालचंद्र नामक मुनि को शंत्रुजय बुलवाया वे शीघ्र ही वहाँ आए। उन्होने शकट पर से शिला उतरवाकर पर्वत पर चढ़ाने की व्यवस्था की। कंधो पर उठानेवाले चौराशी व्यक्तियों को एकत्रितकर, लकड़ी, रस्सी द्वारा शिला को मजबूती से बांधकर कंधों पर रखवाई और छः दिन में शंत्रुजय पर्वत के ऊपर चढ़ा दी।

कहा जाता है कि जावडशाह ने इसीप्रकार शिला को छः महिने में चढ़ाया था। अब प्रतिमा निर्माण का कार्य प्रारंभ किया गया। शिल्पियों की भोजन-शयनादि की उत्तम व्यवस्था की गई। बालचंद्रमुनि की सूचना अनुसार प्रतिमा तैयार होने पर मुख्य स्थान पर लाई गई। कई बार दुर्जनो ने कितनी ही बाधाएँ पहुँचाई परंतु देशलशाह के पुण्य प्रभाव से, साहणपाल की बुद्धि से, और समरशाह के सत्व से दुर्जन भी दुर्जनता छोडकर कार्य में सहायक हुए। बिंब को मूल स्थान पर स्थापित कर पाटण में देशलशाह को समाचार भेजे, यह सुन देशलशाह ने समरशाह से कहा कि अब चतुर्विध संघ के साथ यात्रा पर जाकर प्रतिष्ठा करें जिससे कृतकृत्य हो जाएँ।

पश्चात् पिता पुत्र दोनों श्री सिद्धसेनसुरिजी के पास उपाश्रय में आए, वंदनादिकर बोले कि आप पूज्य के उपदेशरूपी जल से सिंचित हुआ हमारा आशारूपी वृक्ष जो अंकुरित हुआ था, वह श्रेष्ठ जल से सिंचित होने के कारण अब फलदायी हुआ है, उसकी प्रतिष्ठा करने के प्रसादरूप श्रेष्ठ मनोरथ को आप सफल करें। साथ ही विध्वंस से भग्न हुए मुख्य मंदिर के शिखर का उद्धार भी कलश पर्यंत परिपूर्ण करवाया गया है, तथा देव की दक्षिण दिशा में अष्टापद की आकृतिवाला चोवीश जिनेश्वरों से युक्त नवीन चैत्य भी निर्मित

करवाया है। बलानक मंडप में स्थित सिंह का भी उद्धार करवाया है इसके साथ ही आदिजिन के पीछे के भाग में विहरमान तीर्थंकरों का नवीन चैत्य भी बनवाया है। स्थिरदेव के पुत्र लुंढक ने चार देवकुलिकाएँ और जैत्र और कृष्ण नाम के संघपतियों ने उस जिनबिंब सहित आठ श्रेष्ठ देहरियाँ बनवाई हैं। पेथड की कीर्तिलता तुल्य सिद्ध कोटाकोटि चैत्य जो तुर्कों ने तोड़ दिया था, उसका उद्धार हरिश्चंद्र के पुत्र शाह केशव ने किया है। इसीप्रकार देवकुलिकाएँ लेपादि जो अन्य नष्ट हुए थे उन सभी को पुण्यशालियों ने निर्मित करवाया है, इसप्रकार तीर्थ में सभी स्थान पूर्ववत् हो गए हैं, और कलश की, दंड की तथा अन्य सभी अर्हंतो की प्रतिष्ठा अब करवानी है। इत्यादि विषयवस्तु देशल शाह ने कही।

पश्चात् देशलशाह ने आचार्यों, ज्योतिषियों और श्रावकों आदि को बुलवाकर प्रतिष्ठा का मुहुर्त निकलवाया। मुहुर्त का निर्णय होने पर निमंत्रण पत्रिका मुख्य ज्योतिषी के पास लिखवाई और उसका सत्कार कर उत्सव किया। प्रतिष्ठा का समय आने पर देशलशाह ने सभी देशों में अपने कुटुंबीजनों, पुत्रों, पौत्रों और मंत्री आदि को भेजकर संघ को निमंत्रण भेजा। इसके बाद देशलशाह ने यात्रा योग्य रथ जैसा एक देवालय बनवाया, पौषधशाला में जाकर आचार्य महाराज से अपने ऊपर वासक्षेप डलवाया।

पश्चात् सर्वोत्तम दिन में, शुभ वार और नक्षत्र में देवालय में प्रस्थान करने का देशलशाह ने विचार किया। शुभ दिन में पौषधशाला में सभी संघों को एकत्रित किया। देशलशाह वासक्षेप डलवाने हेतु गुरु के सन्मुख बैठे, गुरु ने उनके भाल पर तिलक किया और उनके शीश पर वासक्षेप डाला और इसके बाद समरसिंह पर वासक्षेप डाल "तूं संघपतियों में अग्रणी हो ऐसा आशिर्वाद दिया"।

पोष शुक्ल ७ के शुभ दिन संघ का प्रयाण समय था। उस समय गृह देवालय में स्थित आदिनाथ प्रभु की प्रतिमा को लेकर देशलशाह ने उसे रथ

में स्थापित किया और उस रथ में दो श्वेत वृषभ जोड़े, कि उसी समय एक सौभाग्यवती स्त्री श्रीफल, अक्षत भरा हुआ थाल लेकर सामने आई। उसने देशलशाह तथा समरशाह के सिर पर अक्षत फैंके। श्रीफल हाथ में दिया और ललाट पर कुंकुम का तिलककर पुष्प की माला गले में पहनाकर आशीर्वाद दिया। पश्चात् वाद्ययंत्रों की नादध्वनि के साथ रथ आगे चलने पर अनेक शुभ सगुन हुए। पाटण में तो रंग जमा हुआ था। भाग्य से ही कोई घर बचा होगा।

शंखारिका गाँव से संघ के साथ पाटण पहुँचकर पौषधशाला में जाकर सभी सूरि महाराजों को समरशाह ने वंदन पूर्वक संघ के साथ पधारने की विनती की और प्रत्येक घर जाकर सभी श्रावकों को आदर पूर्वक साथ में चलने की प्रार्थना की जिससे सभी लोग शीघ्र ही आ गए।

संघ में सर्व सिद्धांत पारंगत श्रीविनयचंद्रसूरि, श्रीबृहद्गच्छरूपी आकाश में चंद्र के समान विचरण करनेवाले श्रीरत्नाकरसूरि, गौरवयुक्त अंतःकरणवाले श्री देवसूरिगच्छ के श्री पद्मचंद्रसूरि, श्रीसंडेरगच्छ के श्रीसुमतिसूरि, भावडागच्छ के आचार्य श्री वीरसूरि, श्रीतारागच्छ के श्रीसर्वदेवसूरि, ब्राह्मणगच्छ के श्रीजगतसूरि, श्रीनिवृत्तिगच्छ के आम्रदेवसूरि, श्रीनाणकगणरूपी आकाश को विभूषित करनेवाले सूर्य समान श्रीसिद्धसेन आचार्य, बृहद्गण के श्रीधर्मघोषसूरि, नागेन्द्रगच्छ के श्रीप्रभानंदसूरि, हेमसूरि संतानीय पवित्र श्रीवज्रसेनसूरि और अन्य कई गच्छों के आचार्य संघपति देशल के साथ संघ में आने को तैयार हो गए थे। चित्रकूट, वालाक, मरु, मालव आदि प्रदेशों में स्थित प्रायः सभी मुनि पधारे थे। श्री सिद्धसूरि सर्वदर्शनी और देशल के साथ चले थे और देशल ने उनका प्रवेश महोत्सव किया था। इस संघ के साथ अन्य संघ, संघपति जैत्र और कृष्ण, हरिपाल, देवपाल, श्रीवत्स कुल के स्थिरदेव के पुत्र लंढक साथ में थे। तथा सोनी प्रह्लाद, सत्यवचनी उत्तम श्रावक सोढाक, धर्मवीर वीरश्रावक दानेश्वर देवराज आदि गुर्जर भूमि पर जो कोई भी श्रावक थे वे सभी संघ में सम्मिलित

हुए थे। उन सभी के आजाने के बाद देशल ने संघ का प्रयाण आगे करवाया। मंडप में स्तंभ की तरह मुख्य जैत्र, कृष्ण, लंढक और हरिपाल ये चार थे। सूबा अलपखान के पास भेंट लेकर समरशाह दरबार में गए। खान के समीप भेंट रखी, खान ने संतुष्ट होकर घोडे के साथ तसरीफ दी और समरशाह ने खान से संघ की रक्षा के लिए बात करने पर खान ने दश महावीर संघरक्षा हेतु दिए पश्चात् समरशाह संघनायक पवित्र संघ में मिल गए। संघ में वाद्ययंत्रों के साथ पालखियाँ, घुडसवार, ऊँट, गाडियाँ आदि थे; तथा पैदल दल की तो गिनती ही नहीं थी। आगे देशलशाह, पीछे समरसिंह तथा सहजा का पुत्र सांगणशाह, लूणिगजी का पुत्र सोमजी सहित चल रहे थे। समरसिंह चारों और घोडे को दौडाकर श्रीसंघ की सभी प्रकार से जाँच कर लेते।

प्रत्येक गाँव के संघ और गाँव के ठाकुर समरशाह को आया देख दही, दूध आदि की भेंट देते थे, तथा देशलशाह ने प्रत्येक स्थान पर दानशाला भी खोल दी थी। इसप्रकार प्रयाण करते हुए संघ शेरीसा तीर्थ आ पहुँचा। जहाँ श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में बिराजमान है। धरणेन्द्र से पूजीत चरणवाले वे प्रभु आज भी सप्रभाव हैं। जिस प्रतिबिंब को प्रथम सूत्रधार ने अपनी आँखों पर पट्टी बाँधकर एक ही रात्रि में देव के आदेश से निर्मित किया था। मंत्र शक्ति से समस्त मनोवांछित प्राप्त करनेवाले श्री नागेन्द्रगण के अधीश्वर श्री देवेन्द्रसूरिजी ने सम्मेतगिरि से वीश तीर्थंकरों के बिंबों को और कांतिपुरी में वर्तमान में स्थित तीन तीर्थंकरों (बिंबों) को मंत्र शक्ति से मंगवाया था, और इस श्रेष्ठ तीर्थ को श्रीदेवेन्द्रसूरि ने स्थापित किया था। संघवी देशलशाह ने यहाँ स्नात्र महापूजा, महोत्सव के साथ ध्वजा अर्पित कर आरती की, समरशाह ने भोजनादि का दान दिया। अष्टाह्निका उत्सव के बाद प्रयाण कर संघ के साथ देशलशाह क्षेत्रपुर (सरखेज) पहुँचे। वहाँ भी देव भक्ति कर धोलका आए। प्रत्येक गाँव नगर में चैत्यपरिपाटी करते हुए, महाध्वजा, पूजा आदि से पुण्य उपार्जन करते हुए संघवी देशलशाह अनुक्रम से पिप्पलालीपुर

(पिपराली) आ पहुँचे और वहाँ से शत्रुंजयगिरि को देख देशलशाह अति हर्षित निमग्न हुए। समरसिंह को आगे कर श्रीसंघ के साथ महाकार्य साधते हुए देशलशाह ने लापशी बनवाकर महोत्सव कर गिरिराज का पूजन किया और याचकों को प्रचुर दान दिया।

दुसरे दिन तीर्थनाथ के दर्शन करने की उत्कंठा से प्रयाण कर शत्रुंजयगिरि के समीप पहुँचे। ललितादेवी (वस्तुपाल की पत्नी) द्वारा बनवाए गए सरोवर के तट पर समरशाह ने श्रीसंघ का आवास बनवाया। श्री विमलगिरि के दर्शन होने पर अंग अंग में आनंद नहीं समा रहा था। पर्वतराज को पूजा, प्रणाम किया। देशलशाह ने दूसरे दिन शत्रुंजय पर चढ़ने का विचार किया, इसी मध्य एक व्यक्ति बधाई लेकर आया कि दोलताबाद (देवगिरि) से सहजपाल और खंभात से साहणपाल संघ सहित पधारे हैं। यह सुनकर समरसिंह अत्यंत प्रसन्न हुए और संघ सहित आगेवानी हेतु गए। बंधु से मिले, भेटकर प्रणाम किया और दोनों भाईयों ने समरसिंह से कहा कि भाई, दूसरे संघपति से मिलो। खंभात के संघ में कई आचार्य ते उन सभी को समरशाह ने वंदन किया। पाताकमंत्री के भाई मंत्री सांगण खंभात से साथ आए थे, तथा वंशपरंपरागत संघपतिपद को प्राप्त करनेवाले संघवी लाला भावसार, सं. सिंहभट उत्तम श्रावक, और वस्तुपाल के वंश के मंत्री वीजल सहर्ष संघ में आए थे, तथा मदन, मोल्हाक, रत्नसिंह आदि असंख्य श्रावक आनंदपूर्वक प्रतिष्ठा प्रसंग में आए थे। सभी की भक्ति समरशाह ने की और विमलगिरि शिखर पर चढ़ने के लिए सब तैयार हुए। प्रातःकाल में पालीताणा शहर के श्री पार्श्वजिन तथा श्री महावीर प्रभु को वंदन कर देशलशाह संघ सहित पर्वत के पास आए। वहाँ स्थित श्री नेमनाथ प्रभु को पूजकर श्री सिद्धसेनसूरिजी को हाथ का सहारा देकर देशलशाह ने पर्वत पर चढ़ना प्रारंभ किया। उस समय श्री शत्रुंजय पर्वत वृक्षों, पशु-पक्षियों से और पानी के झरनो द्वारा प्राकृतिक सौंदर्य से भरा हुआ था। देशलशाह ऊपर चढ़कर

प्रथम प्रवेश के समय जिसका स्वयं ने उद्धार करवाया था उस भगवान आदिनाथ की माता की प्रतिमा को देखकर वंदन पूजन कर श्री शांतिनाथ चैत्य में गए। वहाँ पूजा की वहाँ से श्री आदिनाथ जिन मंदिर जाकर वहाँ पूजा की। स्वयं द्वारा उद्धार की गई कपर्दियक्ष की मूर्ति के दर्शन संघ सहित कर सिंहद्वार पहुँचे। वहाँ भगवान को देखकर प्रचुर धन की वृष्टि करी। चैत्य के मध्य भाग में प्रवेश कर, स्वयं द्वारा निर्मापित श्री आदिनाथ को वंदन करने हेतु देशल ने भूमि पर लेटकर प्रणाम किया, पश्चात् युगादिनाथ के समीप आए। भक्ति से आदिनाथ प्रभु के दर्शन किए। पश्चात् आदिनाथ की लेप्य मूर्ति को पुष्प से पूजा, प्रदक्षिणा की और अनेक अरिहंतो के बिंबों की पूजा की। पश्चात् पांडवों की मूर्ति को पूजकर, रायणवृक्ष के नीचे स्थित भगवान के चरणचिह्नों को तथा स्वयं द्वारा बनवाई गई आश्चर्यकारक मयूर की मूर्ति को देखकर स्वर्ण, मणि मोती की वृष्टि की। वहाँ महोत्सव कर याचकों को दान देकर, बावीश तीर्थंकरों को पूजकर, आदिनाथ को प्रणाम कर अपने स्थान पर पुत्र सहित आकर प्रतिष्ठा विधि करने हेतु तत्पर हुआ और प्रतिष्ठा करने का आदेश समरसिंह को दिया। सोरठ और वालाक से भी हजारों व्यक्ति यहाँ आए थे। माघ महिने की (वि. संवत १३७१) शुक्ल त्रयोदशी और रविवार के दिन संघ को एकत्रित किया और श्री सिद्धसेनसूरिजी आदि प्रमुख आचार्यों के साथ समरसिंह और देशल पानी लेने कुंड की ओर गए। वहाँ दिक्पाल तथा कुंड के अधिपति देव की विधि पूर्वक पूजा की, श्री सूरिद्वारा मंत्रित पानी द्वारा कलश भर सौभाग्यवती स्त्रियों के सिर पर रखवाकर संघ सहित चैत्य में आए। कलश योग्य स्थान पर रखवाकर उन ४०० स्त्रियों से सैंकड़ो औषधियों के मूलको मंगल गीत गाते हुए पीसवाना प्रारंभ करवाया। सूरिजी ने उन स्त्रियों पर वासक्षेप डाला और औषधियों का चूर्ण तैयार होने पर उसे शराव में डाला गया। जिनालय के चारों ओर नौ नौ वेदिकाएँ बनवाई गई, उनके चारों ओर ज्वारे उगाए गए।

रंगमंडप के मध्यभाग में प्रभु के सन्मुख नंदावर्तपट्ट रखने हेतु एक हाथ ऊँची चौकोर विशाल वेदिका बनवाई और उस पर चार स्तंभोंवाला स्वर्ण कलशयक्त विविध वस्त्रों और केले के स्तंभ से सुशोभित मंडप बनवाया। उसके समीप मुख्य चैत्य हेतु बनवया गया ध्वजदंड प्रतिष्ठा के लिए स्थापित किया। मुख्य चैत्य के आसपास के चैत्यों की प्रतिष्ठा करने हेतु सुंदर ऊँची वालुका युक्त समूल कुश सहित वेदिका बनवाई। द्वार पर आम के पत्तों की बंदनवार बाँधी गई। सूरिजी महाराज ने गोरोचन, केसर, कर्पूर और कस्तुरी आदि मुख्य द्रव्यों द्वारा प्रथम चंदन का लेप कर नंदावर्त का पट्ट लिखा।

जब पानी से भरी हुए कुंड में ज्योतिष की घटिकाएँ पानी से भर जाने पर तल में डूबने लगी, तब प्रतिष्ठा का समय जानकर सूरिमहाराज मुख्य जिनमंदिर में आए, उस समय अन्य आचार्य भी प्रतिष्ठा करन हेतु उसकी विधि में सावधान होकर मुख्य चैत्य की प्रतिष्ठ के लिए अपने अपने आसन पर आकर बैठ गए। देशल भी पुत्र सहित स्नान कर विशुद्ध वस्त्र पहनकर ललाट पर चंदन का तिलक कर चैत्य में आए। अन्य श्रावक भी अपने अपने जिनबिंब लेकर उपस्थित हुए। श्री सिद्धसेनसूरिजी अँगुली में स्वर्ण की मुद्रिका और हाथ में कंगन पहनकर दो वस्त्र धारण कर जिन्धर के सन्मुख खड़े हो गए। जिनेश्वर के दाहिनी दिशा में साहण सहित देशलशाह और बायीं ओर समरसिंह सहित सहजपाल स्नात्र पढ़ने हेतु तैयार हुए। सामन्त और सांगण दोनों भाई चँवर सहित जिनेश्वर के पास खड़े हुए। किसी की कुदृष्टि न पड़े इसलिए जिन के कंठ में अरिष्ट रत्न की माला पहनाई। जिन के कर पर रक्षा निमित्त रक्षाबंधन बाँधा। प्रतिष्ठा के लिए योग्य समस्त वस्तुएँ वहाँ रख दी गई। मींढल सहित ऋद्धि और वृद्धि नामक ये दो औषधियाँ जिन के हाथ पर बाँधी और गुरु ने देशल आदि श्रावकों के हाथ पर मींढल सहित कसुंबी मंगलसूत्र बाँधा। इसके बाद सिद्धसेनसूरिजी ने स्नात्रक से स्नात्र का प्रारंभ करवाया और श्री आदिजिन का स्नात्र सूरिजी ने स्वयं करवाया।

लग्न-मूहुर्त की घड़ी आ पहुँचने पर श्री सिद्धसेनसूरि सावधान होकर ज्योतिषियों के द्वारा बताए गए प्रतिष्ठा के लग्न को साध रहे थे। शुभलग्न में जिन प्रतिमा को लाल वस्त्र द्वारा आच्छादित कर चंदन और सुगंधी द्रव्य द्वारा पूजा की; उस समय समरसिंह पौषधशाला में जाकर नंदावर्त का पट्ट सौभाग्यवती स्त्री के सिर पर रखवाकर चैत्य में लाए। चारों ओर वाद्ययंत्र बजन लगे। लोग जिनगुण गाने लगे। मंडप की वेदिका पर नंदावर्त के पट्ट् को प्रतिष्ठित किया गया। उसे बिछाकर यथाविधि कर्पूर द्वारा सूरिजी ने पूजा की। फिर लग्न समय हो गया है ऐसा जानकर चाँदी की कटोरी और सोने की शलाका हाथ में लेकर श्री सिद्धसूरिजी महाराज ने ऋषभजिन के प्रतिबिंब से वस्त्र खिंचकर उसके नेत्रों में सूरमा और शर्करा के मिश्रणवाला अंजन किया। और विक्रम संवत् १३७१ की माघ मास के शुक्लपक्ष की चतुर्दशी, पुष्य नक्षत्र और सोमवार के दिन मीन लग्न में नाभिनंदन श्री ऋषभदेव भगवान की प्रतिष्ठा की। प्रथम जावडशाह के उद्धार के समय श्री व्रजस्वामी ने प्रतिष्ठा की थी और उसके बाद यह प्रतिष्ठा हुई। श्री सिद्धसेनसूरि की अनुज्ञा से मुख्य प्रासाद के ध्वजदंड की वाचनाचार्य नागेन्द्रसूरि ने प्रतिष्ठा की। सभी पुत्रों के साथ देशलशाह ने चंदन और बरास द्वारा आदिनाथ प्रभु के शरीर पर विलेपन कर उनके समीप पकवान प्रमुख नैवेद्य रखे। उस समय वाद्ययंत्र बजने लगे। आनंद से कई लोग नृत्य करने लगे। मंगल गीत गाए जाने लगे। अनेक प्रकार से उस समय भव्य जनों ने महोत्सव किया। अब देशल शाह ध्वजदंड की स्थापना को तैयार हुए। श्री सिद्धसूरी जो को हाथ का सहारा देकर पुत्र सहित देशलशाह ध्वजदंड के साथ शिखर पर चढ़ गए। वहाँ सूत्रधारों द्वारा दंड की स्थापना की और दंड के साथ ध्वजा बाँधकर याचकों को दान दिया तथा उसके पाँचों पुत्रों ने धन की वृष्टि की।

देशलशाह ने तीन छत्र और दो चँवर आदिजिन के चैत्य में दिए। स्वर्ण दंड युक्त और चाँदी के तंतुओं से बने हुए दो अन्य चँवर दिए। मनोहर स्नात्र कुंभ, चाँदी की आरती, मंगल दीपक भी दिया। सभी जिनेश्वरों की स्नात्र विधि

की । सभी जिनों की चंदनादि द्वारा पूजा की, फिर आचार्य महाराज श्री सिद्धसेनसूरि के चरण में वंदन कर अन्य मुनियों की भक्ति पान द्वारा की और यह प्रतिलाभ लेकर प्रातःकाल अपने पुत्र सहित देशलशाह ने उद्यापन किया। पश्चात् भाट, चारण, याचक, दीनदुःखी जनों को भोजनदान आदि से सत्कार करते हुए दश दिन तक उत्सव मनाया। ग्यारहवें दिन प्रातःकाल सूरिजी महाराज के स्वहस्त से प्रभु का कंगन खुलवाया और स्वयं द्वारा बनवाए गए अलंकार देशलशाह ने प्रभु को चढ़ाए।

देशलशाह ने संघ सहित आदि जिन की आरती उतारना प्रारंभ किया। उनके दोनों ओर साहण और सांगण चँवर धारण कर और सामन्त और सहजपाल कलश धारण कर खड़े हुए, फिर समरसिंह ने पिता के नौ अंगों पर चंदन का तिलक किया। ललाट पर तिलक कर अक्षत लगाकर गले में फूलों की माला पहनाई। अन्य संघ के व्यक्तियों ने भी चंदन से चरण पूजा कर भाल पर तिलक कर, आरती की पूजा कर उनके गले में माला पहनाई। देशलशाहन ने आरती उतारकर मंगलदीप ग्रहण किया। भाट उस समय देशल तथा समरसिंह की बिरुदावली गाने लगे। उनको प्रचुर दान दिया गया। पश्चात् कर्पूर द्वारा मंगलदीप प्रज्वलित कर बजते हुए वाद्ययंत्रों के साथ मंगलदीप स्तुति बोलकर हाथ जोड़कर शक्रस्तव द्वारा आदिजिन की स्तुति की। सूरिजी महाराज ने भी उसके बाद आदिजिन की अमृताष्टक द्वारा स्तुति की।

प्रतिष्ठा महोत्सव-अभिष्ट कार्य की सिद्धि से उत्पन्न हुए आनंद वश देशल ने नृत्य किया और स्तुति की फिर युगादि प्रभु से विदा मांगी, देशल कर्पदियक्ष के मंदिर में गए, वहाँ नारियल और लापसी के द्वारा यक्ष की पूजा की उसके मंदिर पर ध्वजा चढ़ाकर धर्मकार्यों में सहायता करने की प्रार्थना की।

संघनायक देशलशाह शत्रुंजय तीर्थ में बीस दिन ठहरकर पुत्र सहित श्री सिद्धसेनसूरि के साथ पर्वत पर से नीचे उतरने के लिए तैयार हुआ। सभी अरिहंतों को नमस्कार कर, प्रातःकाल में पर्वत से नीचे उतरकर संघ के निवास

स्थान पर आए और सुंदर भोजन द्वारा मुनिवरों से प्रतिलाभ लेकर परिवार सहित श्री संघ को भक्तिपूर्वक भोजन करवाया ।

इस संघ में आचार्य, वाचनाचार्य, उपाध्याय आदि पदस्थ पाँचसौ मुनि थे, उन्हे तथा अन्य दो हजार मुनियों की अनेक प्रकार के वस्त्रों और उचित वस्तुओं के द्वारा भक्ति की । समरसिंह ने सातसौ चारण, तीन हजार भाट, हजार से अधिक गायकों को धन वस्त्रादि का प्रचुर दान दिया । वाटिकाओं के मालियों को धन देकर पुष्पपूजा के लिए बगीचों को खरीदकर उनका नवनिर्माण करवाकर पूजा करनेवाले तथा गायकों को वहाँ सेवा भक्ति के लिए नियुक्त किया । इसके बाद देशल शाह ने उज्जयन्तगिरि (गिरनारजी) तीर्थ की यात्रा के लिए संघ सहित प्रयाण किया । संघ के साथ मार्ग में अनेक तीर्थों की यात्रा तथा धर्म प्रभावना कर पाटण की ओर श्री संघ के पहुँचने पर सोईल गाँव में, पत्तनवासी जन उस संघ के सन्मुख आए । संघवी देशल तथा समरशाह के चरणों को चंदन और स्वर्ण पुष्प से पूजा, गले में पुष्पमाल पहनाई, मोदक आदि भोजन से स्वागत किया। समस्त वर्ण के लोग स्वागत हेतु आए थे, उन सभी का संघपति ने तांबूल, भोजन, वस्त्र आदि से सन्मान किया । पश्चात् शुभ मुहूर्त में नगर प्रवेश करते समय समरशाह सामैया में घोडे पर और देशलशाह पालकी पर आरुढ़ हुए । मृदंग, भेरी आदि वाद्ययंत्र की ध्वनि के साथ नृत्य करते हुए, नगरजनों ने भी नगर को ध्वज-पताका आदि से सुशोभित बनाया हुआ था समरशाह ने नगर प्रवेश किया । उसके पीछे संघपति ने देवालय और गुरुवर्य के साथ पाटण में प्रवेश किया । उस दिन नगरजनों से यात्रा की प्रशंसा सुनते हुए, मंत्रणा ग्रहण करते हुए अनुक्रम से अपने निवास पर पहुँचे । वहाँ कुमारिकाओ ने देशल तथा समरशाह के ललाट पर अक्षत युक्त तिलक किया । गीत, मंगलादि कर श्री पंचपरमेष्ठि का स्मरण करते हुए देशलशाह ने अपने घर को सुशोभित किया ।

देशलशाह ने आदि जिन को कपर्दीयक्ष के साथ देवालय से उतारकर घर के देरासर में स्थापित किया। नगरजनों का तथा याचकों का वहाँ भी विशेष सन्मान कर विदा किया। सहजपाल आदि पुत्रों ने अनुक्रम से विनयपूर्वक पिता के चरणो का दुध से प्रक्षालन किया। तीसरे दिन शाह ने देव भोज करवाया, उसमें इच्छानुसार भक्तपान आदि द्वारा साधुओं की भक्ति की। नगर के पाँच हजार मनुष्यों को भोजन करवाया। संघपति देशलशाह ने इस तीर्थोद्धार में सत्तावीश लाख सत्तर हजार (२७७०००० द्रव्य का व्यय किया था। इस कार्य को कर शाह अपनी आत्मा को धन्य मानते हुए नित्य धर्मकार्य में तत्पर होकर गृहकार्य में व्यस्त हो गए।

सं.१३७५ में देशलशाह ने इसके पश्चात् भी सात संघपति, गुरु और दो हजार मनुष्यों के साथ सभी महातीर्थों की यात्रा की थी। पूर्व की भाँति दो यात्रा की थी। उन यात्रा में भी ग्यारह लाख से अधिक (रु.११००००० का व्यय किया था। उस समय सोरठ देश में म्लेच्छों से बँधे हुए समस्त जैनों को मुक्त करवाकर समयमेघ बने थे।

श्री सिद्धसूरि महाराज ने अपनी शेष आयु तीन महिने की जानकर, देशलशाह से कहा कि आपकी आयु भी एक महिना शेष है, तो उकेशपुर (ओशीया) में जाकर मैं स्वयं कक्कसूरि को मुख्य चतुष्किका में अपने पद पर स्थापन करना चाहता हूँ यदि तुम्हारी भी इच्छा हो तो साथ चलो। जहाँ देवताओं के द्वारा बनाई गई वीर भगवान की प्रतिमा स्थापित है ऐसा वह उत्तम तीर्थ है, यह सुनकर देशलशाह भी समस्त सामग्री तैयार करवाकर संघ और सूरि सहित वहाँ गए। मार्ग में देशलशाह का स्वर्गवास हो गया।

श्री सिद्धसूरिजी ने माघ पूर्णिमा को कक्कसूरि को अपने हाथों मुख्य स्थान पर आरूढ़ किया।

दिल्ही के सार्वभौम कुतुबुद्दीन बादशाह ने समरसिंह के गुण सुनकर आदेश भेजकर समरसिंह को दर्शन हेतु बुलवाया । समरशाह भी योग्य सामग्री को एकत्रित कर दिल्ली की ओर रवाना हुए । दिल्ली पहुँचने पर बादशाह ने मान सहित बुलवाकर सन्मान किया । बादशाह के समक्ष विविध भेंट सौगात रखकर नमन करते हुए समरसिंह की ओर बादशाह ने उत्कंठा से उनकी ओर देखा। संतुष्ट हुए बादशाह ने स्वयं प्रसाद देने के साथ सभी देश के व्यापारियों में मुख्य पद दिया । वहाँ रहते हुए बादशाह के स्नेह प्रसन्न होते हुए कुछ दिन वहाँ बीत गए, गवैये के कविता गाने पर एकबार उपहार में समरशाह ने एक हजार टंक उसे दिए । कुतुबुद्दीन के बाद ग्यासुद्दीन बादशाह बना, उसने भी कुतुबुद्दीन की भाँति समरसिंह को पुत्रवत् स्वीकार किया । बुद्धिशाली समरसिंह ने बंदी के रूप में पकड़े गए पांडु देश के राजा वीरवल्लभ को बादशाह से मुक्त करवाकर उसके देश में पुनः राजगद्दी पर बैठाया इस कारण उसे "राज संस्थापनाचार्य" नामक उपाधि मिली ।

बादशाह के आदेश से धर्मरत्न समरशाह ने जिनेश्वर की जन्मभूमि मथुरा और हस्तिनापुर में श्री जिनप्रभसूरि के साथ संघपति बनकर संघ के सहित तीर्थ यात्रा की ।

उस समय तिलंगदेश में ग्यासुद्दीन का पुत्र उल्लखान सूबेदार के पद पर था । उसने भी समरसिंह को विश्वासपात्र अपना भाई समझकर तिलंगदेश का सूबेदार बनाया । वहाँ भी तुर्कों के बंदी बने हुए ग्यारह लाख लोगों को मुक्त करवाया । अनेक राजा, राणा, व्यापारियों पर समरसिंह ने बहुत उपकार किया था ।

समरशाह ने सभी देशों से बुलवाकर श्रावकों के कुटुंबों को तिलंगदेश में बसाया, उरंगलपुर में जिनालय बनवाकर जैन शासन का साम्राज्य एक छत्र कर

न्याय नीति से तिलंगदेश की रक्षा कर पूर्वजों को गौरवान्वित किया था और अंत तक धर्मसाधना करते हुए स्वर्ग सिधारे ।

इस उद्धार के ऐतिहासिक प्रमाण ।

१. देशलशाह द्वारा किए गए उद्धार के कुछ स्मृति चिह्नों के रूप में प्रमाणित तीन लेख श्री शत्रुंजय की बडी टूंक में मिलते हैं ।
   १. कुलदेवी सच्चिकादेवी की मूर्ति के ऊपर -
   २. सपत्नी सं. आसाधार देशल के बडे भाई की मूर्ति पर,
   ३. राणा महीपालदेव (आरासण की खान के स्वामी) की मूर्ति पर है ।

(देखें गुर्जर काव्य संच और गायकवाड ओरिएं. सीरीज द्वारा प्रकाशित)

२. 'समरशाह के स्वर्गवास पश्चात् वि. सं.१४०४ में उनकी धर्मपत्नी के साथ की एक मूर्ति उनके पुत्र सालीग और सज्जनसिंह द्वारा बनवाई गई और कक्कसूरि के शिष्य देवगुप्तसूरि द्वारा प्रतिष्ठित की गई थी, जो वहाँ देखने में आती है ।

आणंदजी कल्याणजी पेढी की वेबसाईट
www.anandjikalyanjipedhi.org
की मुलाकात लीजिए ।
पेढी के द्वारा संचालित तीर्थों का इतिहास जानिए,
पढिये एवं तीर्थों की तस्वीरें देखिए ।

सचोट चोट : शत्रुंजय गिरिराज के यात्रिकों से नम्र प्रार्थना....

- हसमुखभाई वेदलीया,डीसा

तीर्थाधिराज शत्रुंजय गिरिवर की महिमा अपरंपार है । प्रथम तीर्थंकर आदिनाथजी यहाँ पूर्व निन्यान्वे बार पधारे और अन्य तीर्थंकर भी इस तीर्थ-भूमि को पावन कर चुके हैं । अनंत आत्माओं ने यहाँ से सिद्धिपद की प्राप्ति की है । इस तीर्थ की यात्रा करने की सबकी महेच्छा होती है, यह सहज स्वाभाविक है । कार्तिक पूर्णिमा के पश्चात् तो यहाँ लगभग नित्य मेले जैसा वातावरण देखने को मिलता है । छड़ी पालक अनेक संघ, बसयात्राएँ, निन्यान्वे यात्रा के आराधक और व्यक्तिगत हजारों यात्रिगण गिरिराज आकर आध्यात्मिक ऊर्जा प्राप्त करते हैं । जहाँ श्रद्धा-भक्ति की लहर दौड़ती है वहाँ यात्रियों का आवागमन निरंतर होता ही रहता है । ऐसे समय में हमारी यात्रा विधि सहित, जयणा सहित, अनुशासन सहित और देव-गुरु और धर्म की आज्ञानुसार हो इस हेतु कुछ विनम्र सूचनाएँ ध्यान में रखने की प्रार्थना है ।

यात्रा गहन अंधकार में प्रारंभ न करें, अंधेरे में यात्रा करने के कारण सुरक्षा के कई प्रश्न उत्पन्न होते हैं । साथ ही साथ 'जयणा' धर्म का पालन भी नहीं होता । सोपानो के आसपास स्थित सूक्ष्मजीव हमारे पैरों के नीचे कुचलें जाते हैं, और कभी कभी जहरीले जीवजंतु हमें डंख मारकर हानि भी पहुँचाते हैं । इसलिए सूर्योदय से कुछ समय पूर्व यात्रा प्रारंभ करना हितकारक है ।

यात्रा खुले पैरों से करने से परम पावन भूमि का हमें स्पर्श होता है । यह अत्युत्तम है तथापि शारीरिक दुर्बलता के कारण कपड़े के जूते अथवा मोजे पहनने पड़े तो वैसे जूते-मोजे धर्मशाला से न पहने, क्योंकि धर्मशाला के आगे के भाग में (डोली) पालकी वाले और माल सामान की ढुलाई करनेवाले लोग

वहाँ निरंतर पानमसाला खाकर चोक में थूँकते रहते हैं, कफ और नाक भी वहाँ साफ करते हैं। इस कारण यदि हम धर्मशाला से ही कपड़े के बने जूते-मोजे पहन लें तो वह तमाम अशुद्धि गिरिराज को भी दूषित करेगी। हद की बात तो तब होता है कि, इस लेख के लिखनेवाले ने जब निन्यान्वे की यात्रा की, उस समय आराधक और पूज्यनीय लोगों को भी इस प्रकार के जूते-मोजों के साथ तलहटी से रंगमंडप और पर्वत पर शांतिनाथ प्रभु के देरासर में, राय के पगला स्थान पर, पुंडरीक स्वामी के जिनालय में आते जाते हुए प्रत्यक्ष देखा है। प्रश्न यह उठता है कि चमड़े अथवा रब्बर के जूते पहनकर सीधे रंगमंडप तक कैसे जा सकते हैं ? इसप्रकार की छूट नहीं रोकी गई तो भविष्य में स्वयं आदिनाथ के गर्भगृह में भी गंदी जुराबों के साथ लोग सरलता से प्रवेश करते दिखाई देंगे।

विशेषत: शारीरिक प्रश्न या भयानक रुग्णावस्था से और वृद्धावस्था से जो लोग मुक्त हैं, उन्हे तो पैदल चलकर ही यात्रा करनी चाहिए। डोली-पालकी वाले और सामान उठानेवाले मजदूरों को साथ न लें, क्योंकि पालकीवाले और मजदूर लोग जहाँ जहाँ बैठते हैं, वहाँ वहाँ बारंबार पान-मसाला खाकर थूँक-थूँककर गिरिराज को अपवित्र करते हैं। बड़ी मात्रा में तम्बाकू और प्लास्टिक की थैलियाँ इधर-उधर फैंकते हैं, किसी की सहायता बिना यदि स्वयं थोड़ा कष्ट उठाकर यात्रा करें तो उसका फल अधिक मिलता है। अनुभव में आया है कि, तलहटी से यात्रा प्रारंभ करने पर प्रथम चार बड़ी सीढ़ीयाँ चढ़ने पर थकान अधिक लगती है। अन्यथा प्रथम विश्राम के पश्चात् और उसके बाद चलने का मार्ग प्रारंभ होने पर सरलता से पर्वत पर चढ़ सकते हैं। शरीर को कष्ट कहाँ देना है ? हमें तो पालकी में ही बैठना है। इसप्रकार की मनोवृत्ति से की गई कई यात्राओं की अपेक्षा यदि एकबार पैदल चलकर पर्वत चढ़कर

यात्रा करेंगे, तो वह यात्रा जीवन की अमूल्य स्मृति बन जायेगी। छोटे छोटे बालकों को और वृद्ध दादा-दादियों को उत्साह के साथ यात्रा करते हुए अपनी आँखो से देखोगे, तो सदैव के लिए डोली-पालकी को अलविदा कहे बिना नहीं रहोगे। इस लेखन के लेखक ने पढ़ा है कि, गुजरात के महामंत्री वस्तुपाल-तेजपाल की बंधु जोड़ी ने अपनी अंतिम अवस्था में पर्वत पर न चढ़ पाने के कारण तलहटी तक की यात्रा से ही संतोष मान लिया था, परंतु डोली-पालकी का उपयोग नहीं किया।

यदि आप किसी कारणवश रामपोल का द्वार खुलने से पूर्व पहुँच गए हों, तो वहाँ बैठकर प्रभु का ध्यान करें अन्यथा पेढ़ी के समयपत्रक में विघ्न ना पहुँचाएँ। निश्चित समय पर द्वार खोला जाए तब आपकी धक्कामुक्की के कारण आपके स्वजन-संबंधी को नीचे गिराकर कुचले जा सकते हैं, इसलिए ऐसा कार्य न करें। विशेषतः निन्यान्वे यात्रा के आराधकों हेतु सूचना है कि शीघ्र गति से तीन-चार यात्रा करने के प्रयास में आपकी चपेट में कोई न आ जाए, इसका विशेष ध्यान रखना।

कार्तिक पूर्णिमा से निन्यान्वे यात्राएँ प्रारंभ होती हैं तब भीड़ बहुत अधिक होना स्वाभाविक है, ऐसे समय प्रभु के दरबार में पैर रखने की जगह भी मुश्किल से मिलती है। ऐसे समय में प्रभु के मुखारविंद के दर्शन से भी संतोष मानना चाहिए। विजातीय स्पर्श कर भीड़ में मनचाहे वैसे प्रवेश कर गर्भगृह तक पहुँचने हेतु मर्यादा भंग करने को कैसे चलाया जा सकता है ?

पूजा करनी हो तो स्नान हेतु निश्चित स्थान पर पहुँचकर पेढी द्वारा सुनिश्चित सुविधाओं का शिष्टता से उपयोग करें। उदाहरण स्वरूप परिमित जल से स्नान करें, स्नान के समय लिया गया तोलिया इधर उधर न फेंक कर निचोड़ कर सुखा दें।

जिससे आपके पश्चात् आनेवाले यात्री के काम में वह आ सके।

प्रभु के प्रक्षाल पूजा में जहाँ लाइन अटक गई हो, वही बैठें, किसी ना किसी प्रकार बीच में अथवा आगे घुसने का प्रयास न करें। तीर्थ में हम कर्म छोड़ने आए हैं, इसलिए अनुचित तरीके से लाइन में घुसकर नए कर्म बंधन न हों इसका विशेष ध्यान रखें।

प्रभुपूजा की समाप्ति के पश्चात् बाजठ-पुस्तकें और पूजा की थाली-कटोरियाँ आदि चाहे जहाँ कोने इत्यादि में इधर उधर न रखकर ये सभी वस्तुएँ उनके सुनिश्चित स्थान पर रखें। और हम लोग जो जहाँ चाहे वहाँ ये थाली-कटोरियाँ-पट्टे के नीचे रखकर नीचे उतर जाते हैं इससे हमारे पीछे आने वाले यात्रियों को कई बार थाली-कटोरियाँ मिलती ही नहीं है। प्रभु की यात्रा में अनुशासन आवश्यक है। पेढी और संचालक चाहे जितनी व्यवस्था करें, परंतु जबतक हम विवेक का पालन नहीं करेंगे, तबतक सब कुछ व्यर्थ ही है। यदि पूजा के वस्त्र पेढी से लिये हो, तो पूजा के बाद वस्त्र परिवर्तन कर पूजा के वस्त्र व्यवस्थित जमाकर पूजारी को वापिस लौटा देने चाहिए।

सोपान चढ़ते समय सहयात्रियों के साथ साथ न चलें इसके कारण मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। आगे-पीछे चलने से मार्ग खुला रहता है व अन्य यात्रियों को सरलता होती है। इसलिए विशेषतया हाथ में हाथ पकड़कर चलने से असुविधा न हो, यह विशेष इच्छनीय है। यह तीर्थक्षेत्र है, इसका ध्यान रखकर अनुशासन पूर्वक मर्यादा के साथ चलना आवश्यक है।

अनिवार्य-आवश्यकता ही हो तो छोटे बालकों को छोड़कर समस्त यात्रियों को अपने साथ का अल्पाहार, बिस्कीट जैसे खाद्य पदार्थ साथ न लें और गिरिराज पर मिलने वाला दही उपयोग में न लें। गिरिराज पर कोई भी चाय-अल्पाहार आदि भोजन लेने से गहन कर्मबंधन होता है.

प्रक्षालपूजा के साथ केसरपूजा का पास मिल सकता है, परंतु यात्री की वहाँ (लगभग दोपहर के २-०० से ४-००) बजे तक ठहरने की भावना हो तभी पूजा का पास लें। अनावश्यक पास लेने से पास के राउन्ड बढेंगे, जिससे सच में पूजा करनेवाले भी अपना नंबर पता नहीं कब आएगा ऐसा सोचकर वे भी पूजा करने से वंचित रह जाएँगे, इसलिए हमें किसी की पूजा में अवरुद्ध होने का निमित्त नहीं बनना चाहिए।

तीर्थक्षेत्र में कम से कम कंदमूल-अभक्ष्य खान-पान का त्याग, रात्रिभोजन निषेध, ब्रह्मचर्यपालन इतना तो अवश्य करना चाहिए। अन्य स्थल पर किया गया पाप तीर्थक्षेत्र में आने पर नष्ट हो जाता है, परंतु तीर्थक्षेत्र में किए गए पाप वज्रलेप की भाँति हो जाते हैं उनका नाश बड़ा कठिन होता है।

नीचे सार्वजनिक मार्ग पर रास्ते में अवरोधक स्वरूप घास चारा बेचनेवालों से घास लेकर उसी स्थान पर गायों को चारा डालने के स्थान पर उतने पैसे पेढी द्वारा संचालित छापरियाली पांजरापोल में जमा करवाना हितकारक है, इससे जीवदया का सही पुण्य प्राप्त होगा।

हमारे सभी आराधक अपने सामर्थ्यानुसार प्रभु की दानपेटी में छोटी-बड़ी रात्रि प्रभु को अर्पित करते हैं, विविध बोली-चढावों में लाखों रुपयों का लाभ लिया जाता है इसकी भूरी भूरी प्रशंसा करते हैं परंतु हमें इसके साथ ही कुछ न कुछ छोटी-बड़ी राशि पेढी के 'साधारण खाते' में अवश्य जमा करवाने की आदत डालनी चाहिए। सभी सुज्ञ पाठकों के ध्यान मे यह बात है ही कि, पेढी द्वारा यात्रियों की सुविधा हेतु अनेक उत्तरदायित्व निर्वाह किए जाते हैं, उसमें अधिकांशतः 'साधारण द्रव्य' की ही आवश्यकता होती है। इसलिए साधारण खाते में राशि जमा करवाने का अपना कर्तव्य निभाना हमारे लिए आवश्यक है।

यात्रा करने के पश्चात् नीचे उतरने पर भोजन करने की इच्छा हो तो ही भोजनपास लें और भोजनगृह में जाकर आवश्यकता अनुसार ही पदार्थ लें। थोड़ी सी भी झूठन न छोड़ें।

तीर्थ में बोली का लाभ लिया हो, तो स्मृति में रखकर वह राशि पेढी के कार्यालय में जमा करवाकर पक्की पहुँच अवश्य प्राप्त कर लें।

पेढी के द्वारा रखवाए गए सूचना पट्ट के अनुसार केमरे के प्रतिबंध, बरमूडा-चड्डा प्रतिबंध की सूचनाओं का पूरी तरह पालन करें।

हमारी यात्रा सदैव के लिए अविस्मरणीय बन जाए इस हेतु हम स्वयं ही अनुशासन-मर्यादा-तप, त्याग और उदारता-दया-करुणा के संस्कारों का जतन करने हेतु कटिबद्ध रहें।

सभी नौ टूंक की यात्रा अवश्य करें, समय और थकान इन दो शब्दों की कमी करके भी नौटूंक के भव्य जिनालयों की यात्रा अवश्य करनी चाहिए।

आज ही खरीदें !

गूर्जरेश्वर राजर्षि कुमारपाल द्वारा विनिर्मित तारंगा तीर्थ का उत्तंग अजितनाथ जिनालय और उसके कलावैभव, शिल्प स्थापत्य का अद्वितीय खजाना, अन्य मंदिरो में सुरक्षित नक्काशी-कलाकारी और पाषाण के अंकन अब सभी के लिए डीवीडी के रूप में उपलब्ध है। तीर्थ की परिचय पुस्तिका के साथ डीवीडी का मूल्य रूपये १२०/-

तारंगा तीर्थ के कार्यालय से तथा पेढी के मुख्य कार्यालय से प्राप्त हो सकती है।

कार्तिक पूर्णिमा का महत्त्व !

कार्तिक पूर्णिमा के दिन शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा करने से विशेष लाभ होता है । इस दिन द्राविड और वारिखिल्ल दश करोड मुनियों ने एक साथ इस तीर्थ से मुक्ति प्राप्त की है ।

श्री ऋषभदेव भगवान के सौ पुत्र थे । उनमें द्रविड नामक एक पुत्र था। उसके द्राविड और वारिखिल्ल नामक दो पुत्र थे । द्रविड ने बड़े पुत्र द्राविड को मिथिलानगरी का राज्य दिया, और छोटे पुत्र वारिखिल्ल को एक लाख गाँव दिए । पश्चात् श्री आदीश्वर भगवान के पास दीक्षा ग्रहण की । द्राविड छोटे भाई की संपत्ति देख ईर्ष्या से जलने लगा । उससे छोटे भाई की उन्नति सहन नहीं हुई । इस कारण उस पर द्वेष रखने लगा । वारिखिल्ल को इसका पता चलने पर वह भी बड़े भाई पर द्वेष रखने लगा । दोनों परस्पर द्वेषभाव वाले होकर एक दूसरे का राज्य छीनने का अवसर खोजने लगे । वारिखिल्ल ने मिथिला नगरी में अपना निवासस्थान बनाया । इसलिए द्राविड ने उससे कहा : तुम मेरे नगर में नहीं रह सकते । इससे वारिखिल्ल क्रोधित होकर अपने नगर में चला गया परंतु बड़े भाई द्वारा किए गए अपमान का प्रतिशोध लेने हेतु सैना सहित युद्ध करने आया । छोटा भाई युद्ध करने आ रहा है यह सुनकर द्राविड भी सैना लेकर युद्ध करने नगर के बाहर आया । दोनों के मध्य भयंकर युद्ध हुआ । लगातार सात महिने तक युद्ध चला । उसमें दोनों पक्षों के मिलाकर दश करोड़ शूरवीर वीरगति को प्राप्त हुए । हाथी, घोडे आदि पशुओं का भी बड़ी संख्या में संहार हुआ ।

इसके बाद वर्षाकाल आने पर युद्ध रुक गया । वर्षाकाल पूर्ण होने पर एकबार द्राविड सुपल्लवित वन को देखने हेतु मंत्री आदि परिवार सहित घूमने निकला । वन को देखते देखते तपस्वियों के आश्रम के समीप पहुँच गया । मंत्री की प्रेरणा से द्राविड राजा तपस्वियों के आश्रम में गया । सभी ने तपस्वियों

के कुलपति को प्रणाम किया । कुलपति ने आशीर्वाद दिया । पश्चात् अनुग्रह बुद्धि से हितोपदेश दिया । इस समय दोनों भाई युद्ध में लगे हुए हैं यह बात कुलपति को पता थी । इसलिए प्रसंग के अनुरूप उपदेश देते हुए कहा कि, - "हे राजन् ! राज्य नर्क पहुँचानेवाला है । इसलिए राज्य की आकांक्षा से युद्ध करना उचित नहीं है उसमें भी भाई के साथ युद्ध करना तो आप जैसों के लिए बहुत ही अनुचित माना जाता है । आप युगादीश के पौत्र हैं । आप अपने पूर्वजों का थोड़ा विचार करें । आपके दादा ने राज्य छोड़ा, पिता ने भी राज्य छोड़ा । यदि राज्य अनर्थ का कारण न होता तो आपके दादा और पिता राज्य क्यों छोड़ते ? आपके दादा व पिता ने तिनके की भाँति राज्य का त्याग कर संयम को स्वीकार किया और आप दोनों भाई पृथ्वी के टुकड़े के लिए लड़ें यह कितनी लज्जा की बात है !

कुलपति का उपदेश द्राविड के हृदय में बैठ गया । विवेकदृष्टि खुल गई और अपना अपराध समझ में आ गया । हृदय में इस भूल के लिए अति परिताप हुआ । प्रतिबोध देनेवाले कुलपति का उपकार माना । इसके बाद शीघ्र छोटे भाई से क्षमायाचना करने हेतु चल दिया । बड़े भाई को अकेला आता देखकर वारिखिल्ल उसके सामने आया, बड़े भाई के पैरों में गिरा । द्राविड ने उसे दोनों हाथों से उठाकर स्नेह से हृदय से लगा लिया । दोनों के परस्पर प्रेमभरे नेत्र मिले । जिन आँखों में अभीतक वैररूपी अग्नि के प्रज्वलित अंगारे बरस रहे थे, उन आँखों से अब प्रेमरूपी अमृत बरसने लगा । दोनों की आँखों में अश्रु छलक उठे । वहाँ उपस्थित राज्य अधिकारियों की आँखों में भी यह दृश्य देखकर अश्रु छलक उठे । वर्षों के पश्चात् दोनों भाईयों को युद्ध के स्थान पर प्रेम से मिलते हुए देखकर सभी लोग विस्मित हो गए ।

रोते रोते छोटेभाई ने बड़े भाई से क्षमायाचना मांगते हुए कहा : ' कि बंधु ! युद्ध हेतु आपके सामने आकर मैंने जो धृष्टता की है उसके लिए मुझे क्षमा करें । बड़े भाई का हृदय भर आया । बोलना चाहता है परंतु बोल नहीं पाता

है। वह बोला : वारिखिल्ल ! इसमें तेरा कोई अपराध नहीं है। अपराध तो मेरा ही है। मैं ईर्ष्या के कारण तेरी उन्नति सहन नहीं कर पाया। इसलिए हम दोनों के बीच शत्रुता का मूल कारण मैं ही हूँ। इसलिए तुम मुझे क्षमा करो। तुमसे क्षमा माँगने ही मैं यहाँ आया हूँ। इसप्रकार दोनों परस्पर क्षमायाचना माँगी।

पश्चात् वारिखिल्ल ने द्राविड से कहा : ' हे अग्रज ! अब इन दोनों राज्यों का संचालन आप कीजिए। द्राविड ने कहा : अबतक मैं अज्ञानरूपी अंधकार में भटक रहा था, परंतु अब मुझे ज्ञानरूपी प्रकाश मिल गया है। इसलिए मेरा राज्य भी मुझे नहीं चाहिए तो तुम दोनों राज्य की कहाँ बात कर रहे हो ! मेरा मन अब त्याग के मार्ग पर जाने को उत्कंठित हो गया है। अब तुम ही दोनों राज्यों को स्वीकार करो।

वारिखिल्ल बोला : तो फिर मुझे भी यह राज्य नहीं चाहिए। जिस मार्ग पर आप चलने को तैयार हुए हैं उसी मार्ग पर मैं भी आपके साथ चलूँगा। पश्चात् दोनों ने अपने पुत्रों को अपना अपना राज्य सौंप दिया और दश करोड़ लोगों के साथ उस कुलपति के पास से तपस्वी व्रत को स्वीकार किया। सभी कंदमूल आदि आहार करते थे। गंगानदी में स्नान करते थे। श्री आदिनाथ का जाप और धर्मकथा आदि द्वारा दिन व्यतीत करते थे। इसप्रकार लाख वर्ष तक वहाँ रहकर साधना की।

एकबार नमि-विनमि के दो विद्याधर शिष्य विद्या के बल पर आकाश में उडते हुए वहाँ आए। द्राविड और वारिखिल्ल आदि तपस्वियों ने उनको प्रणाम किया। मुनियों ने धर्मलाभ का आशीर्वाद दिया। पश्चात् द्राविड ने पूछा : हे भगवंन् ! आप कहाँ जा रहे हैं ? मुनियों ने उत्तर दिया : 'हम श्री शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा करने जा रहे हैं। द्राविड ने शत्रुंजय तीर्थ का माहात्म्य पूछा, इसलिए मुनियों ने उन्हें शत्रुंजय तीर्थ का महात्म्य बताया। शत्रुंजय का अनुपम महात्म्य जानकर सभी तपस्वी तीर्थ की यात्रा करने हेतु उत्कंठित हुए और सभी तापस

मुनियों के साथ श्री शत्रुंजय की ओर चलने लगे। मुनियों ने उन्हें साधुधर्म का उपदेश दिया। जिससे उन्होने तापसव्रत को त्याग कर साधुओं के पाँच महाव्रत स्वीकार किए।

अनुक्रम से वे सभी श्री शत्रुंजय के पास पहुँचे। तीर्थ को देखकर सभी प्रसन्न हुए। वहाँ श्री आदिनाथ आदि के जिनबिंबों के दर्शन किए। सभी ने मासक्षमण किया। मासक्षमण के अंत में विद्याधर मुनियों ने उनसे कहा : इस तीर्थ की सेवा से तुम सभी के अनंतकाल से संचित हुए सभी कर्म नष्ट हो जाएँगे। इसलिए तुम सभी संयम-तप में तत्पर होकर यहीं रहो। ऐसा कहकर विद्याधर मुनि अन्यत्र चले गए।

द्राविड और वारिखिल्ल आदि दश करोड मुनि वहाँ रहकर विविध प्रकार का तप आदि करने लगे। अंत में मासक्षमण कर कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा के दिन निर्वाण प्राप्त किया। इसप्रकार कार्तिक पूर्णिमा के दिन श्री शत्रुंजय तीर्थ के ऊपर द्राविड और वारिखिल्ल दश करोड मुनियों के साथ मुक्ति के मार्ग पर गए होने के कारण कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा के दिन श्री शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा करने से विशेष लाभ होता है। इस दिन तप आदि धर्म करने से विशेष फल मिलता है।

पूज्य साधु-साध्वीजी भगवंतों की वैयावच्च-सेवाभक्ति के लिए पेढी के मुख्य कार्यालय में वैयावच्च खाता कार्यरत है। उपधि-उपकरणों से लेकर आराधना में उपयोगी दर्शन-ज्ञान-चारित्र की सामग्री से पूज्य श्रमण-श्रमणी भगवंतों की भक्ति की जाती है।

गिरनार तीर्थ में जय तलेटी में नवनिर्मित देहरियों में परमात्मा की चरण पादुकाएँ तथा देव-देवियों की प्रतिमाएँ इत्यादि प्रतिष्ठा की बोलियाँ

बावीसवें तीर्थपति परमात्मा श्री नेमिनाथ भगवान के तीन कल्याणकों से धन्य और कृतपुण्य बने, सोरठ की धरती के शृंगार समान गिरनार महातीर्थ की उपत्यका में भव्य तलहटी के निर्माण का कार्य चल रहा है। निर्धारित समय पर वह पूरा होगा। गिरनारजी महातीर्थ की नवनिर्मित तलहटी में नवनिर्मित देवकुलिकाएँ-देहरियाँ निम्नोक्त प्रमाण से चरणपादुकाएँ प्रतिष्ठित करनी हैं तथा अधिष्ठायक श्री गोमेध यक्ष की प्रतिमा स्थापित करनी है।

श्री नेमिनाथ भगवान की चरणपादुकाओं की प्रतिष्ठा
श्री पार्श्वनाथ भगवान की चरणपादुकाओं की प्रतिष्ठा
श्री अभिनंदनस्वामी की चरणपादुकाओं की प्रतिष्ठा
श्री चंद्रप्रभस्वामी की चरणपादुकाओं प्रतिष्ठा
श्री संभवनाथ भगवान की चरणपादुकाओं की प्रतिष्ठा
अधिष्ठायक श्री गोमेध यक्ष की प्रतिमा स्थापित करने का चढ़ावा
अधिष्ठायक श्री गोमेध यक्ष की प्रतिमा की प्रतिष्ठा
अधिष्ठायिका श्री अंबिकादेवी की प्रतिमा की पुनः प्रतिष्ठा
(९-१०) गुरु भगवंतों की २ प्राचीन चरणपादुकाओं की पुनः प्रतिष्ठा

यह समस्त चढ़ावा - बोलियाँ ता. ३१-१०२०१६, शनिवार, पोष शुक्ला-२ के दिन सुबह ९.३० बजे, हठीसींग की वाडी, अहमदाबाद में बोली जाएंगी।

आपके स्वजनों को भी इसमें भाग लेने हेतु प्रेरित कीजिएगा।

नोंध : वि.सं. २०७३, वैशाख शुक्ला १२ - रविवार, दिनांक ७-५-२०१७ के शुभ दिन मंगल मुहूर्त में गिरनारजी महातीर्थ की तलहटी में नवनिर्मित ९ देहरियों में ये समस्त चरण-पादुकाएँ तथा प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित होंगी।

तीर्थ व्यवस्था, सलाह सूचन, दान-सहयोग, जीवदया, पांजरापोल, जीर्णोद्धार वगैरह प्रवृत्तियों के लिए पेढी के संपर्क सूत्र

शेठ आणंदजी कल्याणजी ट्रस्ट
श्रेष्ठि लालभाई दलपतभाई भवन,
२५, वसंतकुंज, नवा शारदा मंदिर रोड, पालडी, अहमदाबाद-३८० ०२७
फोन : (०७९) २६६४४५०२, २६६४५४३०
समय : सुबह ११ से १-३० व् दोपहर २ से ३-३०
Telefax : 079-266082441 • Email : shree_sangh@yahoo.com
(रविवार एवं अवकाश के अतिरिक्त)

शेठ आणंदजी कल्याणजी ट्रस्ट
पटनी की खड़की, झवेरीवाड, अहमदाबाद-३८० ००१
समय : सुबह ११ से १-३० व दोपहर २ से ३-३० तक
फोन : (०७९) २५३५६३१९
(रविवार एवं अवकाश के अतिरिक्त)

श्री कयवनभाई हेमेन्द्रभाई संघवी
विश्रुत जेम्स, ७०१-२ ए अमन चेम्बर्स ७वा माला,
ओपेरा हाउस, मुम्बई-४०० ००४
फोन : (०२२) ३२९६१८७०
समय : दोपहर १२ से ५ (अवकाश दिनों के अतिरिक्त)

शेठ आणंदजी कल्याणजी ट्रस्ट
श्री रजनीशांति मार्ग, पालीताणा-३६४ २७०
ओपेरा हाउस, मुम्बई-४०० ००४
Tele : 02848-252148, 253656
समय : सुबह ९ से १२.३० दोपहर २.३० से ७

और अंत में

आपको 'श्री आनंदकल्याण' का यह अंक अच्छा लगा ? क्या अच्छा लगा ? कुछ पसंद न भी आया हो तो वह भी हमें खुले मन से पर खुरदरी नहीं अपितु नरम कलम से लिख भेजे । हमें अवश्य अच्छा लगेगा । पत्रव्यवहार के लिए ई-मेईल माध्यम इच्छनीय एवं उपयुक्त रहेगा ।
anandkalyanmagazine@gmail.com

सुवर्ण महोत्स सर्व साधारण फंड का उपयोग एंव उद्देश्य

- ५०० वीं सालगिरह के प्रसंग में छोटी योजना के द्वारा हर एक श्रावक-श्राविका को सहभागी बनने का अमूल्य अवसर।
- ५०० वीं सालगिरह का अद्‌भूत एंव अद्वितीय प्रसंग आयोजन।
- इस फंड की राशि "सुवर्ण महोत्सव अवसर पर आयोजित सर्व साधारण फंड" खाते में जमा होगी।
- इस कोर्पस फंड के व्याज का उपयोग सर्व साधारण खाते में जैसे कि सात क्षेत्र, जीवदाय और अनुकम्पा इत्यादि में आवश्यकता अनुसार किया जायेगा।
- राशि हर साल रू. ३६० या एक साथ रू.५४०० दोनों विकल्प में जमा की जा सकती है।
- **Anandji Kalyanji Pedhi** मोबाईल एप्लीकेशन के द्वारा ओनलाईन भी राशि जमा की जा सकती है।

विशेष जानकारी हेतु संपर्क करे :
शेठ आणंदजी कल्याणजी, २५, वसंतकुंज, नवा शारदा मंदिर रोड,
पालडी, अमदावाद ३८०००७. फोन +91 - 79 26610387
हेल्प लाईन नंबर : + 91-93 75 500 500, + 91-93 76 500 500

Contact : info@anandjikalyanjipedhi.org
Visit : anandjikalyanjipedhi.org
Download : Social Presence
Download : Anandji Kalyanji Pedhi App

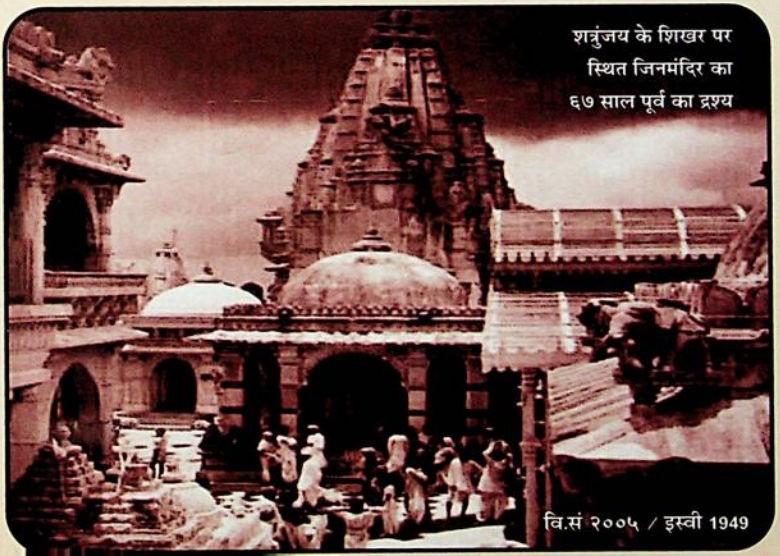

अंक-5

श्री शत्रुंजय तीर्थाधिपति

BOOK - POST

To,

श्री आनंद कल्याण (त्रिमासिक पत्र)
श्रेष्ठी लालभाई दलपतभाई भवन, २५, वसंतकुंज,
नवा शारदा मंदिर रोड, पालडी, अहमदाबाद - ३८० ००७.
E-mail : anandkalyanmagazine@gmail.com